International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(3): 174-175

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(3): 174-175
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 20-03-2018
Accepted: 24-04-2018

Dr. Shubh Kumar
HOD, Department of Sanskrit, GDC, Kathua, Jammu and Kashmir, India

Correspondence
Dr. Shubh Kumar
HOD, Department of Sanskrit, GDC, Kathua, Jammu and Kashmir, India

क्षेमेन्द्र के विविध ग्रन्थों में प्राप्त वास्तुविद्या के सन्दर्भ

Dr. Shubh Kumar

सारांश
'वास्तु' शब्द की उत्पत्ति वस् धातु से हुई है जिसका अर्थ है निवास स्थान। वास्तु विद्या के गृह, प्रासाद, देव नगर, पुर, दुर्ग आदि अनेक भेद हैं। आचार्य क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों में देव वास्तु का ही मुख्य उल्लेख है। इनकी रचनाओं में हिन्दू मन्दिर और बौद्ध विहारों का वर्णन मिलता है। जैसे कलाविलास में उज्जयिनी के प्रसिद्ध मन्दिर महाकालेश्वर का वर्णन है। समयमातृका ग्रन्थ में सात मठ और भद्रा के मन्दिर का उल्लेख है। राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि क्षेमेन्द्र के समकालीन राजा अनन्त की माता श्रीलेखा ने अनेक मठों और अग्रहारों का निर्माण करवाया। अनन्त की पत्नी रानी सूर्यमती ने वितस्ता के तट पर गौरीश्वर मन्दिर के निर्माण के साथ सुभटा मठ का निर्माण करवाया। इस का उल्लेख कवि कलहण ने 'विक्रमांक देवचरित' में किया है। राजतरंगिणी में मालवा नरेश भोज द्वारा कपटेश्वर मन्दिर और कुण्ड के निर्माण का चित्रण मिलता है। इस प्रकार आचार्य क्षेमेन्द्र के कलाविलास, समयमातृका आदि ग्रन्थों में, राजतरंगिणी में और समकालिन साहित्य आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों में भारतीय वास्तु कला के अन्तर्गत देववास्तु या मन्दिर निर्माण कला आदि का समृद्ध स्वरूप मिलता है।

कूटशब्द : वास्तु, गृह, प्रासाद, देव नगर, पुर, दुर्ग

प्रस्तावना
'वास्तु' शब्द की उत्पत्ति वस् धातु से हुई है जिसका अर्थ है निवास स्थान। जिस शास्त्र या विद्या से भूमिचयन और गृह निर्माण आदि का ज्ञान होता है, वह वास्तुशास्त्र कहलाता है। वास्तु शब्द का मुख्य अर्थ गृह निर्माण प्रविधि से लिया जाता है। वेदों में भी गृह शब्द के गेह हर्म्य, वस्त्य, शाला, भवन, आगार, सदन आदि अनेक पर्यायवाची शब्द मिलते हैं। वास्तु के वैदिक देवता का नाम वास्तोष्पति है और ऋक्संहिता में रक्षा की भावना से अनेक मन्त्रों द्वारा उनसे प्रार्थना की गई है। जैसे प्रस्तुत मन्त्रः–

ॐ वास्तोष्पते प्रति जानी ह्यस्मान् स्वावेशोऽनमीवो भवानः।
यत्वे महे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।

इस प्रकार वास्तुशास्त्र का वैदिक तथा ऐतिहासिक महत्त्व सिद्ध होता है। सभी विद्याओं या शास्त्रों का उद्देश्य लोक कल्याण है। उसी प्रकार वास्तु विद्या का भी लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति कराना है। यथा विश्वकर्मा प्रकाश का कथन है चतुर्वर्ग फल प्राप्तिस्सललोकश्च भवेद् ध्रुवम्।।
वास्तुविद्या बहुत प्राचीन है, इसके गृहवास्तु, प्रासादवास्तु, देववास्तु, नगरवास्तु, पुरवास्तु, दुर्गवास्तु आदि अनेक भेद हैं। आचार्य क्षेमेन्द्र के विविध ग्रन्थों में देववास्तु का ही मुख्य उल्लेख है। वास्तु कला के साथ–साथ मूर्तिकला का भी वर्णन है। क्षेमेन्द्र की रचनाओं में हिन्दु मन्दिरों तथा बौद्धविद्वारों के उल्लेख मिलते हैं। तत्कालीन साहित्यकारों तथा मुस्लिम इतिहासकारों की रचनाओं से भी पता चलता है कि भारत के सभी भागों में मन्दिरों, विहारों तथा मठों का निर्माण हो रहा था।[1] कला विलास में उज्जयिनी के प्रसिद्ध महाकालेश्वर मन्दिर का चित्रण आया है। समयमातृका ग्रन्थ में साथ मठ तथा भद्रा के मन्दिर का उल्लेख है।[2] राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि क्षेमेन्द्र के समकालीन सम्राट अनन्त की माता श्रीलेखा ने विभिन्न मठों और अग्रहारों का निर्माण करवाया।[3] अनन्त की पत्नी रानी सूर्यमती ने वितस्ता के तट पर गोरीश्वर मन्दिर की स्थाना की तथा सुभटा मठ का निर्माण करवाया। रानी सुभटा अथवा सूर्यमती द्वारा निर्मित गौरीश्वर मन्दिर तथा मठ निर्माण का उल्लेख कवि कल्हण ने भी किया है। यथा 'विक्रमांक देवचरित' का यह पद्यः–

चक्र धाम त्रिभुवनगुरोः सा वितस्ता समीपे
कामा रातेः शिखर निकर–क्षुण्ण नक्षत्रभार्गम्।
कूजत्कांचीनिवह पिहितज्याध्वनिर्नर्तकीनां
यास्योपान्ते भवति न भवक्रोध पात्रं मनो भूः।।

राजतरंगिणी में मालवा नरेश भोज द्वारा कपटेश्वर में मन्दिर और कुण्ड के निर्माण का चित्रण किया गया है।[4]

राजा भोज द्वारा शिला निर्माण आज भी विद्यमान है। आचार्य क्षेमेन्द्र के ही समकालीन राजा कलश ने विजयेश्वर क्षेत्र में प्रस्तरमय त्रिपुरेश्वर मन्दिर का निर्माण करवाया। इस मन्दिर के शिखर पर धूप का निवारण करने के लिए गगनचुम्बी सुवर्णमय छत्र लगवाया और साथ ही मन्दिर के शिखर पर कलश के नीचे सुर्वण आम्रलख लगवाया। राजा कलश ने अपने नाम से कलशेश्वर नाम मन्दिर बनवाया और उसके शिखर पर सोने की छोटी–छोटी घण्टियाँ लगवाई। इसी मन्दिर में तुर्किस्तान कला अनुसार निर्मित सोने का छत्र लगवाया।[5] सम्राट कलश ने अनन्तेश्वर नामक बाणलिंग की भी स्थापना की। यह विशाल शिवलिंग है, जिसमें बाण बना हुआ है, आज भी कश्मीर में वाराहमूला के पास विद्यमान है।[6] इन मन्दिरों की वास्तुशैली अपना अलग महत्त्व रखती है। इन मन्दिरों की वास्तुकला में उनके छत्रें दोहरी, कोणाकार और एक के ऊपर एक आपस काटती हुई वर्गों की बनी होती है। उनका सामने का तोरण त्रिकोणाकार होता है जिसमें बीच में एक ताखा रहता है। उसके स्तम्भ ऊँचे उठे हुए होते हैं जिसमें लकड़ी अथवा पत्थर का दीप होता है। मुख्य मन्दिर के चारों ओर स्तम्भ युक्त मण्डप या प्रदक्षिणा–पथ होता है।

इस प्रकार उपलब्ध साहित्यिक तथा पुरातात्विक सामग्री के अध्ययन व अवलोकन से ज्ञात होता है कि क्षेमेन्द्र के युग में देवालयों का निर्माण एक पुनीत कार्य समझा जाता था। क्षेमेन्द्र के समकालीन चन्देल राजाओं ने (950–1200 में) खजुराहो के मन्दिरों का निर्माण कराया। इन मन्दिरों में कन्दरीय नाथ महादेव का मन्दिर विशेष सुन्दर है। इस मन्दिर की ऊँचाई की भव्यता आधार और शिखर के लम्बे रूप की रेखाओं के द्विगुणित होने के कारण और भी अधिक हो गई है। प्रदक्षिणापथ में सुन्दर स्तम्भों की योजना है और मन्दिर का कण–कण मूर्तिकला से सज्जित है। जो तत्कालीन मूर्तिकला और शिल्पीकरण के अलौकिक लालित्य का परिचायक है।[7]

आचार्य क्षेमेन्द्र के काल में ही कलिंग के गंग राजा अनन्तवर्मन चोडगंगा ने 1077–1147 में पुरी का प्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर का निर्माण करवाया। कोणार्क का सूर्य मन्दिर भी इसी काल में बना। कोणार्क मन्दिर भारतीय मन्दिर कला अथवा वास्तुविद्या का अभूतपूर्व रत्न है। यह सूर्य मन्दिर रथ के आकार का है जिसे सात घोड़े खींच रहे हैं तथा बारह जोड़ी पहियों पर टिका हुआ है। अतः इसे रथ मन्दिर भी कहते हैं।[8]

इस प्रकार आचार्य क्षेमेन्द्र के कलाविलास समयमातृका आदि विविध ग्रन्थों में, समकालीन साहित्य में अथवा राजतरंगिणी आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों भारतीय वस्तु कला के अन्तर्गत देव वास्तु या मन्दिर निर्माण कला का समृद्ध स्वरूप मिलता है। इसी के साथ भारत के विविध प्रान्तों में जो आचार्य क्षेमेन्द्र के समकालीन जो राजा थे, उनके द्वारा बनवाए गए मन्दिरों के द्वारा वास्तुविद्या का उच्चतम उदाहरण मिलता है।

सन्दर्भ

1. कला विलास 5/20, 21
2. समय मातृका 2/43 तथा 6/10
3. राजतरंगिणी 4/142
4. राजतरंगिणी 7/190
5. राजतरंगिणी 7/524 से 531
6. राजतरंगिणी 7/532
7. भगवत शरण उपाध्याय–प्राचीन भारत का इतिहास 345
8. भगवत् शरण उपाध्याय–प्राचीन भारत का इतिहास 333